International Journal of Information Movement Vol.2 Issue V (September 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 119-125

भारतीय अवनद्ध वाद्य: एक सांगीतिक विश्लेषण

श्रीमती ललिता,
शोधार्थिनी,
संगीत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
Email: ashish3k@gmail.com

प्रकृति का मूल रुप लय में प्रकट होता है, सम्पूर्ण जगत लय से प्रभावित है । मानव जाति के प्रारम्भिक काल से मनुष्य का ध्यान लय पर केन्द्रित रहा है, जो कि एक प्राकृतिक प्रक्रिया है । संगीत का प्रथम चरण लय ही है, जब मानव संस्कृति का विकास भी नही हुआ था, मनुष्य ने उछलते- कूदते विभिन्न प्रकार के पक्षियों की ध्वनियों का अनुकरण करते हुये, लय गति को नृत्य में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था । कालान्तर में लय को एक व्यवस्थित गति प्रयोग की आवश्यकता ने वाद्यों को जन्म दिया । **(देव, बी चैतन्य, पृ० स० ४)** वस्तुत: सबसे पहला वाद्य स्वंय मनुष्य का शरीर है, जो पैर पटककर ताली बजाकर, वाद्यों या निंतबों को पीटकर लय-ताल उत्पन्न करने के काम आता रहा है, इसीलिए हमारे प्राचीन विद्वानो ने मानव-कंठ्ध्वनि को गात्र वीणा (शरीर वीणा) या दैवी वीणा (ईश्वर प्रदत्त वीणा) तथा अन्य सभी वीणाओं को दारवि वीणा (लकडी की वीणा) कहा था| **(देव, बी चैतन्य, पृ०स० २)** "खाना पकाने के बर्तनो की वाद्य रुप में रुपांतरण की कल्पना और भी सरल है, बर्तन, हंडिया तथा अनाज का भंडार रखने मापने और पकाने के काम आने वाले अन्य पात्र जब खाल से मढ दिये जाते है तो ढोल बन जाते है, और यह समझना कठिन नही कि इस तरह किस प्रकार तबला या डग्गा असितत्व में आया होगा । ऐसे ही खाने के काम में आने वाली धातु कि तश्तरी पीटे जाने पर थाली नामक प्रसिद्ध लोक-वाद्य बन जाता है "

लय ने मानव जीवन को इस प्रकार प्रभावित किया कि मनुष्य ने दैनिक प्रयोग की वस्तुओं को ही वाद्य रुप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था । वर्तमान में प्रयोग होने वाले वाद्य प्रारम्भिक वाद्यों के परिष्कृत स्वरूप है । वर्तमान संगीत के तीन मूल तत्वों के आधार पर ही संगीत की उत्पत्ति मानी जाती है, गायन, वादन, नृत्य इन तीनों कलाओं के योग से संगीत को पूर्ण माना गया है, संगीत में वाद्यों की महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वाद्य ; संगीत को पूर्णता प्रदान करते है, वाद्य परिभाषा में अंजना भार्गव के अनुसार **(भार्गव, अंजना, पृ०स० ४४)** "किसी भी संगीत ध्वनि उत्पादक वस्तु को 'वाद्य' की संज्ञा दी जा सकती है, अत: ध्वनि-उत्पादन का माध्यम एक पत्थर, पत्ती से लेकर इलैक्ट्रानिक माध्यम भी हो सकता है । इस प्रकार संगीतात्मक अथवा गति को प्रकट करने वाले उपकरण 'वाद्य' कहलाते है । विभिन्न वाद्यों द्वारा उत्पन्न स्वर तथा लय को वाद्य संगीत अथवा वादन कहा जाता है ।"

प्राचीन संगीत शास्त्रों में 'वाद्य' शब्द के तीन प्रर्याय प्राप्त होते हैं : वाद्य, वादित्र, तथा आतोद्य । वाद्यं तथा वादित्र का प्रयोग सुषिर वाद्यों के लिए किया गया व आतोद्य शब्द का प्रयोग अवनद्ध वाद्यों के लिए किया गया, "असंमतात तुघते ताडय़ते" अर्थात जो चारों ओर से पीटा जाये या ताडित किया जाये 'आतोद्य' है ।

1.0 अवनद्ध वाद्य :

भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है तथा मात्राओं की लय में पुनरावृत्ति से ताल का जन्म हुआ जिसके प्रदर्शित करने हेतु अवनद्ध वाद्यों की आवश्यकता अनुभव की गयी और इसी क्रम में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति हुई । **(शुक्ल,योगमाया, पृ०स० २८)** "'अवनद्ध' और 'आनद्ध' इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति के मूल में 'नद्ध' शब्द है, जोकि संस्कृत भाषा के 'नह' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगाकर बना है । 'नह' का अर्थ बाधना, लपेटना, ढ्कना, पहनना या धारण करना है । अत: 'नद्ध' शब्द का अर्थ चारों ओर से बंधा, ढका, मढा, लपेटा या पहनाया हुआ होता है । इसी 'नद्ध' शब्द के पहले विस्तार या फ़ैलाव के अर्थ वाले 'अव' उपसर्ग के योग से 'अवनद्ध' और समीप सामने तथा चारों ओर से इत्यादि अर्थो वाले 'आ' उपसर्ग के योग से 'आनद्ध' शब्द की उत्पत्ति हुई है । 'अवनद्ध' और 'आनद्ध' दोनों का सामान्य, अर्थ 'बंधा' और ढका हुआ होने से भारतीय संगीत में ये दोनो शब्द चर्म से बंधे, ढकें व मढे हुए मुहं वाले वाद्यों के विशेष अर्थ में रुढ हो गये ।"

अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति के विषय में अनेक धारणायें बनी हुई है जैसे: डमरू को सर्वप्रथम अवनद्ध वाद्य माना जाता है । जिसका अविष्कार शिव के द्वारा किया गया था । इसी प्रकार मृदंग को आदि ताल वाद्य भी कहा गया है, जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा की गयी । इस प्रकार कई वाद्यों को देवी देवताओं से जोडा गया है । मृदंग के विषय में एक अन्य मत के अनुसार - **(मिस्त्री, आबान, ई, पृ०स० २०)**"भगवान शंकर ने जब त्रिपुरासुर नामक राक्षस का वद्य किया तो आनन्द के अतिरेक में वे नृत्य करने लगे किन्तु वह नृत्य लय में नही था अत: इससे पृथ्वी डावाडोल होने लगी जगत सृष्टा ने जब देखा कि पृथ्वी रसातल में जा रही है तो वे भयभीत हुए और प्रलय निवारण हेतु उन्होने तुरन्त त्रिपुरासुर के शरीरवशेष से मृदंग की रचना करके, विजयी शंकर के साथ ताल देने के लिए उनके पुत्र श्री गणेश को प्रेरणा दी । गणपति जी के मृदंग, वादन से प्रभावित होकर शंकर जी ताल में नृत्य करने लगे और इस तरह मृदंग का उदभव एंव ताल का प्रादुर्भाव होने के कारण पृथ्वी रसातल में जाने से बच गयी ।"

'पुष्कर वाद्य' की उत्पत्ति के विषय में भी एक अन्य कथा प्राप्त होती है कहा जाता है कि स्वाति नामक ऋषि जब पानी लेने के लिये सरोवर गये तो उन्होने वर्षा की बूंदो को मंद गति से कमल की छोटी छोटी पंखुडियों पर गिरते देखा, गिरती बूंदो की ध्वनि से प्रेरित होकर स्वाति ऋषि ने 'पुष्कर' वाद्य की उत्पत्ति की और इसी प्रकार अनेक अवनद्ध उत्पत्ति के पीछे अनेक दन्त कथायें प्राप्त होती है । अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति किसी भी प्रकार हुई हो परन्तु अवनद्ध वाद्यों के द्वारा की संगीत को आधार प्रदान किया जाता है व इसी आवश्यकता ने अवनद्ध वाद्यों को जन्म दिया होगा । अवनद्ध वाद्यों का प्रचार वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक होता आ रहा है । वर्तमान के समान प्राचीन काल में भी वाद्यों का प्रयोग निश्चित किया गया होगा, क्योंकि शास्त्रों में हम जिन भेरी, दुदुंभि, गर्गर वाद्यों का अध्ययन करते है सभी का प्रयोग शत्रु को भयभीत करने के लिये या विजय घोष के लिये किया जाता था व मृदंग तथा पणव का प्रयोग गान हेतु किया जाता था । नाटयशास्त्र में भरत ने अवनद्ध वाद्यों की संख्या सौ बताई है परन्तु अन्य संगीत शास्त्रों में सौ से अधिक वाद्यों का विवरण भी प्राप्त होता है । जिनकी चर्चा भरत ने नाटयशास्त्र में नही की है ।

(शुक्ल,योगमाया, पृ०स० ३८) वैदिक काल में मृदंग भूमि दुदुभि, गर्गर वाद्य, पणव वानस्पति आदि वाद्यों का प्रचलन था । वैदिक साहित्य 'वनस्पति' नामक अवनद्ध वाद्य का उल्लेख मिलता है जो वृक्ष की जड में गर्त कर उसे पशु चर्म से आच्छादित करके बजाता जात है । इससे ज्ञात होता है काष्ठ निर्मित अवनद्ध वाद्यों की परम्परा भी बहुत पुरानी है ।

प्राचीन काल में उन वाद्यों का भी प्रचलन था जो वैदिक काल में बजाये जाते थे जैसे: दुन्दुभि, पणव, मृदंग, इनके अलावा अनेक अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख प्राचीन संगीत शास्त्रों में किया गया है,जैसे: भेरी, पटह, डिण्डिम, आडम्बर, मुरज, चेलिका, कोण, आनक, गोमुख आदि इन सभी अवनद्ध वाद्यो का विवरण महाभारत तथा रामायण में किया गया है । प्राचीन काल में गीत वाद्य एंव नृत्य के साथ मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों के अतिरिक्त हाथ से ताली देने की प्रणाली भी विद्यमान थी ।

भारतीय संगीत में सर्वप्रथम अवनद्ध वादक भगवान शंकर या भगवान गणपति को बताया जाता है । यह मान्यता है कि सर्वप्रथम गणपति ने मृदंग पर ताल दी थी जिसका उल्लेख इस प्रकार है : वर्तमान में बनारस घराने में स्तुति के बोल बजाये जाते है जैसे:

गनानाम गणपति गणेश लम्बोदर सौहे
भुजा चार एक दन्त चन्द्रमा ललाट राजे
ब्रह्मा विष्णु महेश ताल दे ध्रुपद गावें
अति विचित्र गणनाथ आज मृदंग बजावे

उक्त पक्तियों में विचित्र शब्द आया है तो प्रश्न यह उठता है कि गणपति ने ऐसा कौन सा विचित्र वादन किया होगा ? इसका विवरण श्री किशन महाराज के द्वारा दिया गया है :

धट धरा धर धर क्रधान
दिं दि दिंनागे नागे नागे
धन धन तिं तिन ताके नाना

ता दिरगन धिरग धिरग
दिं दिं दिनाऽअग दिनाऽअग
ता क्रधान क्रधक धरान तरान धा

क्रधक धरान तरान धा
क्रधक धरान तरान धा

2.0 बोलों का शाब्दिक अर्थ :

जिसने उसके (ईश्वर) रास्ते का ध्यान धरा
व उसका ध्यान बराबर धरता चला गया
जिसने दिन दिन नागा नही दिया उसका धन्यवाद है ।
और जिसने उधर (ईश्वर) को नही ताका उसकी आंखो को धिक्कार है
और जो दिन दिन नागा करता चला गया
न उसकी कीर्ति को धरा और न ही भव सागर को तरा है |

जो बोल श्री गणेश ने मृदंग पर बजाये वर्तमान काल में भी मृदंग पर यही बोल बजाये जाते है । मृदंग वाद्य अति प्राचीन वाद्य है परन्तु आज भी भारतीय संगीत में मृदंग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है

मध्यकालीन संगीत शास्त्रों में भी अनेक अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है । मध्यकाल में प्रबन्ध गायन का प्रचार था ७ वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का पतन हो जाने के पश्चात कालान्तर में छोटी-बडी रियासत के राजा महाराजों ने संगीतज्ञों को आश्रय दिया जिससे संगीत का भी विकास हुआ, धीरे-धीरे उत्तर भारत पर मुस्लिम आक्रमण होने के पश्चात मुस्लिम शासको ने अपना आधिपत्य जमा लिया, जिससे भारतीय संस्कृति के साथ-साथ भारतीय संगीत में भी अनेक परिवर्तन हुये । ध्रुपद धमार का स्थान अब ख्याल गायकी ने ले लिया था जिसका प्रभाव वाद्यों पर परिलक्षित हुआ । **(भार्गव, अंजना, पृ०स० २४७)** "प्राचीन एंव मध्यकालीन संगीत पद्धति का प्रमुख वाद्य मृदंग ही था, किन्तु मृदंग के स्थान पर पखावज शब्द का प्रयोग मध्ययुग से प्रारम्भ हुआ " |

मध्यकाल को संगीत का स्वर्ण युग भी कहा गया है । क्योंकि इस काल में संगीत ने काफ़ी प्रगति की इस काल में अनेक संगीत शास्त्रों की रचना की गई जैसे नारद कृत संगीत मकरन्द, जयदेव कृत गीत गोविन्द, शारंग्देव कृत 'संगीतरत्नाकर', मानसोल्लास, संगीत परिजात, इन सभी ग्रन्थों में वाद्य विवरण दिया गया है मध्यकालीन ग्रन्थ संगीत रत्नाकर के पांचवे तथा छठवें अध्याय में ताल तथा वाद्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है । जिन वाद्यों का उल्लेख भरत ने नाटय शास्त्र में किया है, शारंग्देव ने भी उन वाद्यों का विवरण दिया परन्तु अन्य मध्यकालीन वाद्यों का उल्लेख भी किया है । जैसे : पुष्कर, मृदंग, मर्दल, पणव, दर्दुर या दर्दर, हुडुक्का या आवज, भूमि दुन्दुभि, झल्लरी, पटह, भेरी निसान, तुम्बकी करटा, घट, ढवस, ढक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रुंजा, डमरू, डक्का, मंडिका, डकुली, सेल्लुका, त्रिवली, त्रिकुला । प्राचीन काल के प्रचलित अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, पणव, घट, तथा पटह अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग नवीन तथा परिषकृत रुप के साथ वर्तमान में किया जाता है, इसका विवरण इस प्रकार है :

2.1 मृदंग: (देव, बी चैतन्य, पृ०स० ४२, ४३) "संगीत और अन्य साहित्य में मृदंग का उल्लेख अन्य नामों से हुआ जैसे मुरज या मर्दल, उनका अंतर प्राय: स्पष्ट नही है, यद्यपि वे सभी दो मुहं वाले थे और ज्यादातर ढोल जैसे थे । एक मध्यकालीन लेखक मर्दल का वर्णन इस प्रकार करते है । यह लगभग ४० सेंटीमीटर लंबा बीच से फूला लकडी से बना वाद्य है । इसका व्यास एक ओर लगभग २८ सेंटीमीटर और दूसरी ओर २५ संटीमीटर के करीब है । दोनों मुखों पर पके चावल में राख मिलाकर लेप किया गया है, प्राचीन लेखकों ने मृदंगों की अन्य किस्मों का भी वर्णन किया है । वर्तमान में हम मृदंग शब्द का उपयोग दो मुख वाले भिन्न वाद्यों के लिए करते है, जैसे दक्षिण भारत का मृदंगम, हिन्दुस्तानी संगीत का पखावज और बंगाल का खोल आदि आकार और संरचना में असमानता होते हुए भी मृदंग ही कहे जाते है ।"

2.2 पणव: 'पणव' वाद्य एक ऐसा प्राचीन वाद्य है, जिसका प्रचार वैदिक काल से आज तक होता आ रहा है । 'पणव' वाद्य की बनावट बिल्कुल आधुनिक वाद्य 'हुडुक्का' के समान है जो वर्तमान काल में कुमांऊ क्षेत्र का विशिष्ट लोक वाद्य है । **घट**; घट का उल्लेख प्राचीनकाल से प्राप्त होता है । इस वाद्य की विस्तृत विवेचना मध्यकालीन ग्रन्थों से ही प्राप्त होती है। प्राचीनकाल में पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में तथा भरत ने अपने ग्रन्थ

'नाटयशास्त्र' में जिस दुर्दर वाद्य का उल्लेख किया है वह दुर्दर-वाद्य, घट वाद्य के समान ही था, चमडी से मढे जाने वाले घट वाद्य का विकास, त्रिमुखी तथा पंचमुखी घटो के रुप में हुआ ऐसा भी उल्लेख है । प्राचीन एंव मध्यकालीन शिल्पचित्रों में इस प्रकार के वाद्यों का संकेत मिलता है । तमिलनाडु में पंचमुखी घट-वाद्य का स्वरूप देखने को मिलता है । विकास के साथ-साथ यह घट विना चमडे से मढा भी वादन प्रयोग में आने लगा । वर्तमान में दक्षिण भारत में घटम के रुप में यह प्रयोग में आता है । 'संगीत-सार' ग्रन्थ में माटी के बने खुले मुंह के एंव धातु से बने चमडे से मढे घटों का उल्लेख है । भारतीय आदिवासी लोगों में प्रयुक्त किये जाने वाले मिलाव (केरल) पाबुजी के माटे (राज्यस्थान, घुमट, गोवा, कुडमुल तमिलनाडु) आदि वाद्य इसी श्रेणि के वाद्य है :

2.3 पटह: (मराठे, मनोहर भाल चन्द्र, पृ०स० ८४) यह एक प्राचीन अवनद्ध वाद्य है, इस वाद्य का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, पौराणिक ग्रन्थों महाभारत, मानसोल्लास, भरत भाष्य, नाटयशास्त्र, संगीत रत्नाकर आदि संगीत ग्रन्थों में मिलता है । संगीत परिजात में ढोलक सदृश उल्लेखित करते हुए १८ वीं सदी, अहोबल ने लिखा : "पटह ढोलक इति भाषायाम" | आधुनिक काल का अवनद्ध वाद्य ढोलक का आदिरुप पटह था । संगीत रत्नाकर में पटह के दो रुपों का वर्णन किया गया है १. मार्गी पटह २. देशी पटह :

2.4 मार्गी पटह: इसकी लम्बाई डेढ हाथ से ढाई हाथ तक होती है तथा बीच का भाग कुछ उठा हुआ होता है । इसके दाहिने मुख का व्यास साढे ग्यारह अंगुल तथा वाम मुख साढे दस अंगुल का होता है । काठ, भीतर से खोखला होता है तथा उसके दोनों मुख गोल होते है । दाहिने तथा बांये मुख पर लोहे अथवा काठ की हंसुली पहना कर उन्हे चमडे से लपेट दिया जाता है । दाहिने मुख पर पतला चमडा तथा वाम मुख पर मोटा चमडा मढा जाता है । इन हंसुलियों के सात-सात छेद कर रेशम की डोरी पिरों दी जाती है, जिसमें सोना, पीतल, अथवा लोहे के छल्ले डाल दिये जाते है, जिन्हें आवश्यकतानुसार खींचकर स्वर मिला लिया जाता है ।

2.5 देशी पटह: इसकी लम्बाई डेढ हाथ की होती है, तथा इसका दक्षिण और वाम मुख क्रमश: सात तथा साढे छह अंगुल व्यास के होते है । शेष बातें मार्गी पटह की भांति ही होती है ।

2.6 पटह के बोल : पटह में निम्नलिखित सोलह वर्ण प्रयुक्त होते है: क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ट, थ, द, ध, न, र और ह । इन्ही अक्षरों के संयोग से अनेक बोलों की रचना की जाती है । उदाहरण: किण, खिण, जिण, घण, टण, ढ्ण, तण, थण, दण, हण, आदि ।.

वैदिक काल से वर्तमान तक के अवनद्ध वाद्यों के विकास क्रम में आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन तथा नवीनता देखी जा सकती है, जो कि भारतीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रखते है ।मध्यकाल में ऐतिहासिक तथा सांगीतिक परिवर्तन के कारण भारतीय अवनद्ध वाद्यों तथा उनके प्रयोग पर भी प्रभाव पडा, मध्यकाल में मृदंग को पखावज कहा जाने लगा व ध्रुपद के साथ पखावज का ही प्रयोग किया जाता था, परन्तु जनरुचि परिवर्तन के कारण ध्रुपद का स्थान ख्याल ने ले लिया और नवीन ताल वाद्य तबले की उत्पत्ति हुई । तबले का प्रयोग अब ध्रुपद के साथ भी किया जाने लगा जिससे पखावज अवनद्ध वाद्य का प्रचार थोडा कम हो गया । तबले ने सभी संगीत विधाओं पर अपना प्रभाव स्थापित कर दिया था, जिसका क्रम आधुनिक काल में भी बना हुआ है । परिवर्तन ही विकास का दूसरा नाम है ऐसे ही परिवर्तन वर्तमान अवनद्ध वाद्यों के प्रयोग तथा बनावट में देखे जा सकते है, प्राचीन काल में अवनद्ध वाद्यों को मिटटी से बनाया जाता था, मिटटी के वाद्यो की सुरक्षा कि दृष्टि से तथा आवश्यकतानुसार अवनद्ध वाद्यों को लोहा, पीतल लकडी से बनाया जाने लगा, जिससे कि अवनद्ध को टूटने का भय नही रहा और अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है ।

(मिश्र, लाल मणि, पृ०स० ४१०, ४११) अवनद्ध वाद्यों की बनावट में परिवर्तन के साथ ताल वाद्यों की गूंज में भी परिवर्तन देखे जा सकते है, गूंज की वृद्धि के लिए भारत में प्राचीन काल से मढे हुए चमडे के ऊपर एक विशेष प्रकार के लेप की व्यवस्था होने लगी थी । भरत के नाटय शास्त्र में मृदंग का वर्णन करते हुए एक विशेष लेप लगाने की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है । इस लेप के कारण वाद्यों में स्वरोत्पत्ति होने लगी, इन स्वरों पर नियन्त्रण रखने के लिए कसाव की ऐसी व्यवस्था प्रारम्भ हुई जिसके कारण वादक वादन के समय वाद्य को अभीप्सित स्वर में मिला सके । अवनद्ध वाद्यों को स्वर में मिलाकर वादन करने की प्रथा भी प्राचीन है । महर्षि भरत ने मृदंग के मुखों को नियमानुसार स्वर में मिलाने की प्रक्रिया को मार्जना के रुप में वर्णन किया है ।

प्राचीन लेप की सामग्री का वर्णन भी महर्षि भरत ने किया है । इस सामग्री में रत्नाकर के समय तक कोई विशेष सुधार नही हुआ किन्तु मध्यकाल में ही लगभग चौहदवी शताब्दी के आसपास मृदंग के दक्षिण मुख में किये जाने वाले लेप में महत्वपूर्ण सुधार हुआ और वह था मिटटी अथवा गेंहू आदि के आटा के स्थान पर लौह-चूर्ण कोयला आदि से बना विशेष प्रकार के मसाला का लेप । लौह चूर्ण के द्वारा बने हुए लेप का प्रयोग करने से ताल वाद्यों में कई प्रकार के सुधार हुए जिसने मुख्य निम्नांकित है ।

१. प्राचीन लेप को वादन के समय बार-बार लगाना और वादन के उपरान्त विकाल देना पडता था, किन्तु इस लौहचूर्ण का लेप एक बार लगा लेने पर बहुत काल तक उसमें कोई खराबी नही होती ।

२. प्राचीन लेप के लगाने पर वाद्य का चमडा गीला हो जाने के कारण उसे ऊंचे स्वरों में मिलाना सम्भव नही होता था, किन्तु लौह चूर्ण का लेप सूख जाने पर वाद्य को ऊंचे स्वरों में भी मिलाना सम्भव हो गया ।

३. लेप के सूख जाने के बाद उसका वादन करने पर उसमें अपेक्षाकृत गूंज की भी वृद्धि हो गयी ।

लौह-चूर्ण के द्वारा बने लेप उपर्युक्त विशेष गुणो के कारण इस प्रकार के लेप युक्त वाद्यों का प्रचार बढने लगा । कई वाद्यों में इस प्रकार का लेप दोनों मुखों में होने लगा । जिन वाद्यों में दोनो मुखों पर लेप होता है उनमें तबला, खोल, नाल, (नाल के बांये मुख में ढोलक की भांति भीतर की ओर मसाला रखा जाता है) आदि मुख्य है ।

यदि कलात्मक या प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो अवनद्ध वाद्यों पर बजने वाले वर्णो में अनेक परिवर्तन आ चुके है । भरत ने नाटयशास्त्र में सोलह अक्षर (वर्णो) ध्वनियों का विवरण दिया है । क, ख, ग, घ, ट, ढ, ड, ढ, त, थ, द, ध, म, र, ल, ह जिनका प्रयोग पुष्कर वाद्य हेतु किया परन्तु वर्तमान में वर्ण प्रयोग में अनेक परिवर्तन आये है ।**(मिश्र, लाल मणि, पृ०स० २१०, २११)** "प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाले मृदंग आदि के पाटाक्षरों में मध्यकाल तक सामान्य अन्तर पडा था जो उधर मध्य काल में और बढता चला गया और तथा वर्तमान मृदंग के बोलो का रुप सामने आया । मृदंग से कुछ भिन्न पाटाक्षर तबले के बने । इस प्रकार प्राचीन काल से अब तक इन बोलों के निर्माण में चार बार परिवर्तन हो चुका है । "

प्राचीन, मध्यकालीन, तथा वर्तमान मृदंग के बोलों के कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं:

3.0 प्राचीन बोल:

१. मटकत घिघघटघेघघोटट मंघि घंघन घिघि ।
२. घड गुटु गुटुमघे दो घिंघ दुघि दुघेघि ।
३. किंकाकिटुभेदकिंता किंकेकितांद तसितां गुटुग ।
४. मद्धि कुट घेघेमटिथद्दिध खुखुणंघे घोटत्थिमट । आदि

4.0 मध्यकालीन बोल:

१. ननगीड । गिडदगि ॥
२. ननग्डिदि ॥
३.नंखु नंखु ॥
४. ख च ट किट ॥
५. धिकट धिकट
६. थों गिणि । थों थां गि ॥
७. थिरकि थों ॥
८. नगि झें नगि झें ॥ आदि

5.0 वर्तमान मृदंग के बोल:

धुमकिट धुमकिट तकिटत का, किट
धुमकिट धुमकिट तकिटत का, किट

धुमकिट तकधुम किटतक गदिगन
धा देत देत धुमकिट तकधुम
किटतक गदिगन धा देत देत
धुमकिट तकधुम किटतक गदिगन

6.0 वर्तमान तबला के बोल:

धागिनधा ऽगधग घिनाऽध गिनधग धेनेगेने
धातिरकिटध गिनधग तिनगिन
तगिन ता ऽगतग तिनाऽतगिनतक धिनगिन
धातिरकिटध गिनधग धिनगिन ॥

अवनद्ध वाद्यों का इतिहास मानव सभ्यता से भी पूर्व का है, भगवान शंकर का डमरू तथा गणेश जी का मृदंग अवनद्ध वाद्यों का प्रथम तथा प्राचीन उदाहरण है एंव इसके आधार पर लोक संगीत में प्रयोग होने वाले अनेक वाद्यों का निर्माण किया गया है । वर्तमान में शास्त्रीय संगीत में प्रयोग होने वाले अवनद्ध वाद्य तबला एंव पखावज तथा लोक संगीत में प्रयोग किये जाने वाले वाद्य ढोलक एंव नाल प्राचीन अवनद्ध वाद्यों का परिष्कृत रुप है । जिस प्रकार वैदिक काल में वाद्यों को प्रयोग हेतु निश्चित किया गया जैसे: भेरी, दुन्दुभि, गर्गर वाद्यों का प्रयोग केवल जयघोष या युद्ध के समय ही किया जाता था व पणव, मृदंग पटह आदि वाद्यों का प्रयोग गान हेतु किया जाता था ।

वर्तमान में भी विभिन्न विद्याओं की लिए वाद्य प्रयोग निश्चित किया गया है आज तबला तथा पखावज पर बजाने हेतु भिन्न-भिन्न तालों का निर्माण किया गया तथा इन पर बजने वाली रचनाऐं वाद्यों की वादन शैली के अनुसार निश्चित की गई । संगीत की विभिन्न विधाओं तथा वादन शैलियों के अनुसार तबला एंव पखावज पर ताल व्यवहार किया जाता है । लोक संगीत में अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग लोक शैली की आवश्यक्तानुसार किया जाता है । लोक संगीत में प्रयोग किये जाने वाले अनेक वाद्य जैसे- दक्षिण का घटम ही 'घट' है, जो प्राचीन वाद्य है अलग-अलग प्रांत में अलग-अलग नामों से जाना जाता है - पाबुजी के माटी, घुमट या तमिलनाडु का कुडमुल वाद्य ये सभी वाद्य प्राचीन घट वाद्य के परिष्कृत रुप है ।

इसी प्रकार प्राचीन वाद्य 'पणव' जिसका उल्लेख प्राचीन संगीत शास्त्रों में किया गया है, यह वाद्य आज हुडुक्का के रुप में कुमांऊ मंडल का विशिष्ट लोक वाद्य है, ऐसे अनेक वाद्यों का विवरण प्राचीन शास्त्रों में प्राप्त होता है, जिनका आधार प्राचीन है, तथा प्रयोग या बनावट में परिवर्तन के साथ वर्तमान भारतीय संगीत में प्रयोग किया जाता है । आज अवनद्ध वाद्यों का भारतीय संगीत-शास्त्रीय संगीत या लोक संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है इनकी महत्ता के कारण ही वर्तमान में अवनद्ध वाद्यों के प्रयोग तथा विकास में वृद्धि हुई है ।

7.0 सन्दर्भ:

1. भार्गव, अंजना भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली **पृ०स० ४४** ।
2. भार्गव, अंजना भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली **पृ०स० २४७** ।
3. देव, बी चैतन्य, वाद्य यंत्र, अनुवादक अलका पाठक, पहला संस्करण, १९९३, निदेशक नेशनल बुक ट्रस्ट ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, **पृ० स० ४** |
4. देव, बी चैतन्य, वाद्य यंत्र, अनुवादक अलका पाठक, पहला संस्करण, १९९३, निदेशक नेशनल बुक ट्रस्ट ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, **पृ०स० २** |
5. देव, बी चैतन्य, वाद्य यंत्र, अनुवादक अलका पाठक, पहला संस्करण, १९९३, निदेशक नेशनल बुक ट्रस्ट ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, **पृ०स० ४२, ४३** |
6. मराठे, मनोहर भाल चन्द्र ताल वाद्य शास्त्र, डा० मनोहर भाल चन्द्र मराठे, शर्मा पुस्तक सदन, पटनाकर बाजार, लस्कर, ग्वालियर, म०प्र०, **पृ०स० ८४** |

7. मिस्त्री, आबान, ई पखावज और तबला के घराने एंव परम्परायें, प० केकी, एक, जिजिना, स्वर साधना समिति, मुम्बई, **पृ०स० २०** |
8. मिश्र, लाल मणि भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीटयुशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, **पृ०स० ४१०, ४११** |
9. शुक्ल,योगमाया तबले का उदगम, विकास और वादन शैलियां, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, **पृ०स० २८** |
10. शुक्ल,योगमाया, तबले का उदगम विकास और वादन शैलियां हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, **पृ०स० ३८** |